भारतीय स्वर्णयुग के पावन प्रभात की प्रथम किरण ने जब वसुधारा के अंचल को अपनी चिरां-चिरां रेखाओं से अलंकृत किया, तो उसके आलोक से आलोकित होकर परम्परा पदार्थ अमर्राज ने भी अपने देवताओं सहित स्वनामधन्य पुण्यप्रदान इस भारत देश की मुक्तिकंठे से प्रशंसा की थी। उस समय हमारा यह देश कितना महत्वशाली एवं समृद्धि-वैभव वाला होगा, यह कल्पनातीत है? निम्नाकात पढ़ से आज भी हम इस कथन को सत्य के अत्यधिक समीप पाते हैं।

गायत्री देवा: कितल गीतकालि,
धन्याः ये भारतपुरूषयाः।
स्वर्गार्गार्गोचर न हृष्टुरते,
भवनत भूयः प्रुणाः सुरुवाति।

वसुधारा: यह ऐसा ही देश, जिसकी परशुराम में देवता गीत गायक यह कहते हैं कि: स्वर्गार्गोचर्य को प्रदान करने वाली इस भारतपुरूष में वे ही धन्य हैं, जो देवता से पुणः पुरुष दो信托 होना, यह भूषि पर निवास करते हैं। इसकी महत्तव का एकमात्र कारण यही था कि हमारे देश के उस गौरव-गरीमामय वैभव-विकास के आश्रयपूर्व परम स्वर्गाच्याय एवं निर्माणाधिकारी भूमि, महर्षि तथा महाराजाओं ने समाजमी जीवन को नियंत्रित करने, इंद्रिाय सत्य को स्थिर रखने तथा मानवीय सृष्टि को कुपालित किया होतने से बचने के उद्देश्य से अनेकों शाखाओं की रचना के साथ वे अमूर्त, उच्चत तथा स्वाभाविक विधान निर्मित किए, जिनका अनुकरण कर हमारा यह देश सहज ही में वह गौरवय दर्मोचर का आगत होना चाहता था। व्रतीय समयों के प्रणीत सत्तैवेद्यात्मिक विधानों में ब्रह्मचर्य की प्रथम और सर्वश्रेष्ठ स्थान मिला। संसार की प्राचीनतम अवस्था में यह उनकी अपूर्व योग्यता थी, जिसके साथ रूपक श्रावणोंं में ब्रह्मचर्य-ब्रह्मान्त का प्रचार धार्मिक पर भारत में ही नहीं समस्त धर्मपूर्ण में उत्सर्जन बहुत ही जीवन और ब्रह्मचर्यमंत्रालय की तपोपनिर्मित भारत के गुलाम गौरव को बँके रखते हैं। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि भारत देश के भारतीय गौरव का मूलतत्त्व ही ब्रह्मचर्य है। इसके पश्चिमशास्त्रीय भाषाओं से आज कई शाखाएँ पड़े हैं, उन्होंने एक स्वर के इसकी प्रशंसा कर अपनी शाखायों सार्थकता सम्पादित की है। ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है: -

कायने नमसा वाचा, सर्वब्राह्मणस्य सर्वदा।
सर्वन भृत्यात्, ब्रह्मचर्य च प्रविष्टे।

श्रीरं, मन और चरण से सब आस्थाओ में सर्वदा और सर्वन भृत्यां-(संप्रेषण)-लय को ब्रह्मचर्य कहते हैं। उपयुक्त मन से कार्यक्षण और वाचिक से तीन प्रकार के ब्रह्मचर्य होते हैं। इन विभिन्न स्तरों में सर्वकालिक प्रशंसा रखते हैं। विविध ब्रह्मचर्य में मानविक ब्रह्मचर्य ही सर्वश्रेष्ठ है। केवल ही इसका लाभ करने पर कार्यक्षण और वाचिक ब्रह्मचर्य का स्वभावत: पालन ही जाता है। प्रायः: बहुत से मनुष्य मनोभाव का महत्व न जानकर मानविक ब्रह्मचर्य को अवलंबन करते हैं। वे वास्तव में मूर्खता करते हैं। उन्हें यह मालूम नहीं कि मन की प्रेरणा से ही पाँचों साजेदारियों प्रभुत्र करती है।

कहा गया भी है -

यन्मनसा मनुस्त्र वदति,
यद्वा वदति तत्क्रमणां रहोति,
तत्क्रमणां रहोति तदनुसम्बद्धे।

जिसका मन में चित्त किया जाता है, वही वाणी से निकलता है। जो कुछ वाणी से निकलता है, वही कर्म किया जाता है और जैसा कुछ कर्म किया जाता है वैसा उसका फल भी मिलता है। अतः मन की स्पष्ट रूप से प्रयास्त नीति है। जो मनुष्य मन पर भविष्य नहीं कर सकता तो किसी भी प्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। मन ही मनुष्य के बौद्ध और मोक्ष का कारण है। गीता में कहा भी गया है कि ‘मन एवं मनुष्य्यां, कारणम बल्मोशयो!’,

जिसकी मनःसाधना सिद्ध हो गई, वह दूसरे विषयों पर सहज ही अधिकार कर सकता है। अतः: मानविक ब्रह्मचर्य का पालन करना सर्वश्रेष्ठ है। एक पौराणिक पश्चिमप्रद कथा भी है -
जिन अजनानों का यह मनत्व है कि “अपुनस्य गरिनिसित,
स्वास्ति नैव च नैव च” अर्थात पुनर्हति पुरुष को मुक्ति नहीं
मिलती। और स्वर्ग तो उसे कभी मिल ही नहीं सकता। यह
कथन केवल अज्ञातमूलक है, क्योंकि प्राचीन समय में अनेक
महर्षि, हनुमान, भीमा पितामह आदि के पुत्र नहीं थे, परन्तु वे
मुक्तगामी हुईं हैं। उन्होंने अखेड़ ब्रह्मचर्य का परीमार्जन करके
मुक्ति प्राप्त की। पौराणिक कथन भी है कि ‘स्वास्ति गच्छति
ते सर्वं, ये कैसिन व्रजाचारिण’; जो पूर्व ब्रह्मचारी है वे सभी स्वर्ग
में जाते हैं, उनमें कल्यंप्ति में भोक्ता प्राप्त करते हैं।

पुनर्गति होने से ही कोई मनुष्य मोक्षाधिकारी या
स्वास्थिकारी नहीं बन सकता। पुत्र यदि असदाचारी और लम्बा
हुआ तो उसकी चिता से पिता के अभ्य पोषक बिगड़ जाते हैं।
वह इस लोक में असुभग गतियों का पात्र बन जाता है। इसी प्रकार
व्यावसायिक का पुनर्गति भी सुयोग और सदाचारी नहीं बन सकता।
वह अपने निवृत्त साधनों द्वारा अपने विशुद्ध कुल को भी
करारांत किए बिना नहीं रहता। ब्रह्मचारी के पुनर्गति ‘सदाचारी
और सदुद्धशील होते हैं। किंतु भी है कि पारस के प्रसंग
से लोहा सोना भी जाता है। अखेड़ ब्रह्मचारी पारस के समान है।
जिसके संस्कर्ष में अनेक ज्यादिक भी सुयौग सदुद्ध गुणवत्ता
और सन्तपुरुष बन जाता है। ब्रह्मचारी में कितनी शक्ति है? यह अब
भलीभांति समझ में आ सकता है।

ब्रह्मचारी का पालन साधू, मुनि या संसारी ही कर सकता
है, गृहस्थ नहीं ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है। ब्रह्मचारी तो साधू
और गृहस्थ दोनों का अपूर्ति अल्पकार है। केवल योग्यता और
शक्ति के तारामंडल का ध्यान रखते हुए गृहस्थ और साधू की
ब्रह्मचर्य-मर्यादा में कुछ भेद है। गृहस्थ को अपनी विवाहिता
पल्ली के अतिरिक्त संसार की अन्य समस्त महिलाओं को माला
व भगिनी की दृष्टि से देखना चाहिए। सह-प्रसंग करते समय भी
ज्युतुकलापिशाचिता होकर अपनी मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए।

जो गृहस्थ तिथि (मन, वचन और काया) योग से अखेड़
ब्रह्मचारी का पालन करते हैं और कभी भी किसी प्रकार से
विकारधीन नहीं होते, उनका यह सत असिद्धार्थ कहता
है। दिनकार दीक्षकार ने लिखा है कि एकस्पांग्ध स्वायत्तम
कह दिखाओं विश्वास भी पुरुष स्वरुप्तक विश्वासित: तनसिधिमा प्रतिमा
अतर्थ पुरुष दोनों एक ही शहीर्णा पर जहाँ ब्रह्मचर्य से शिष्य
करते हैं, कभी मन, चचन, काया को निकृत नही होने देते उसका न सभी असिद्धार्थत है। संसार में ऐसे श्री-पुष्क बिले ही हैं। जैन-शास्त्रों में ऐसे किसीने में किसी सेट-सेटानी का उदाहरण बिखरामन है। शास्त्रकार इस प्रकार के ब्रह्मचारियों के विषय में स्पष्ट कहते हैं -

देव दारावा गंधर्व, जजख रक्खस किर्रा।
बंधवारी नमस्तंति, दुःखारे जे करोति ते॥

जो मनुष्य असिद्धार्थ ब्रह्मचार के समान ब्रह्मचार का पालन करते हैं उनको देव, दारावा, गणर्यथा, युध, रक्खस, किर्रा आदि सभी नमस्तत है।

काल के प्रभाव से उस सुवर्ण-युग का अनि हो गया, और वह किर्रा भी प्रायः सदा के लिए अनि हो गई। तभि तो आज सत्त्र असरदार व श्रीमतार आदि का पोर अकेकार छाया हुआ है। इसी अंत्तकार में सातु और गुरुस्त्र अजानी एवं कामी बनकर अपने कर्त्य से चुत हो गए। जहाँ गुरुस्त्र को केवल स्वदेश संस्त्र-ब्रह्मचार का अधिकर था, वहाँ यानि अन्य वातानुमूर्तिके के लिए कई अन्य आबादों का सतीव नष्ट करने में नहीं चुकता। इसी प्रकार जहाँ सातुं को एकत्र लालसी बनकर मानसिक ब्रह्मचार-तप की सृवृत्तम साधना करनी थी, वहाँ यानि अन्य वातानुमूर्तिके के लिए कई अन्य आबादों की सतीव नष्ट करने में नहीं चुकता। वहाँ सातुं को एकत्र लालसी बनकर मानसिक ब्रह्मचार-तप की सृवृत्तम साधना करनी थी, वहाँ यानि अन्य आबादों की सतीव नष्ट करने में भी नहीं हिचकता। यह है विषय दंश आज के देश और समाज की जिसे देखकर हदय आतारिक वेदना से सतना हुए। विश्व नहीं रहता। अतः आत्मोपास और लोकसमक के लिए गुरुस्त्र एवं सातुं को -

न तपस्तप इयाहु क्षुरहारचर्यं तपोतमम्।
ऊधरिता भवेद्र यस्तु स देवो न तु मानव॥

दूसरे तप कुछ भी नही है, ब्रह्मचार ही सर्वोत्तम तप है। जिसने अपने वीर्य को वश में कर लिया वह मनुष्य नही देखता है। वह जानकर अमोघ फल प्रदान करने वाले ब्रह्मचार तप की जीवना करनी चाहिए।

पुरुषों के समान महनाओं लिये भी अपने शील की सर्वप्रकार से रक्षा करना अथवा स्थिर है। खियाँ भी तीन प्रकार की होती हैं। उत्तम, मध्यम और जबन्ध। जो खियाँ अपने पति के अनुकूल रहकर अपने शीलब्रह्म अथवा रूप से पालन करते हैं, मन, चचन और काया से कभी परमुख का स्तरण नहीं करती और न उसे देखने म अभिलषा रूकते हैं। परिचित या अपरिचित अन्य पुरुषों के साथ एकत्र स्थल में न कभी बाता लाए रखते हैं और न किसी प्रकार का संपर्क रखते हैं। अपने पति से संगत रहकर उसके चित्र में कभी उड़ेगा पैदा नहीं होने देती। यदि पैदा हुआ भी तो उसको दूर करने का प्रयत्न करती है। पति एवं कुटुम्बियों को सदाचारत बनाती है और अपनी नविशिष्ठीय से कभी उनको कुमार्गांम नहीं होने देती हैं, वे खियाँ उत्तम खियाँ हैं।

जो खियाँ अपने पति को तो किसी प्रकार का सनताप नहीं देती और अपने शील को भी खण्डन नहीं होने देती, परन्तु अपने कुटुम्ब को अनुकूल नहीं बना सकती। कभी-कभी कुटुम्बियों बातावरण अथवा बनकर अपने पति के सनताप का कारण बन जाती है। अपने स्वर्ग के लिए घर की परिस्थित को लक्ष्य में न रखकर हठाग्राम या मनमुटाब का, चिंता या परेशानी का कारण बनी रहती है।